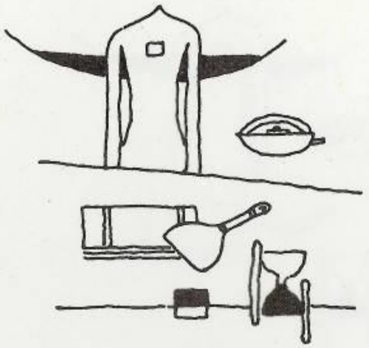

मुझे
कहना है अभी
वह शब्द
जिसे कहकर
निःशब्द हो जाऊँ

मुझे
देना है अभी
वह सब
जिसे दे कर
निःशेष हो जाऊँ

मुझे
रहना है अभी
इस तरह
कि मैं रहूं
लेकिन
मैं रह न जाऊँ।

मूल्य रुपये 30/-

ISBN 81-7135-028-3

जन्य-
ी समूह

पगडंडी सूरज तक
मुनि क्षमासागर

पगडंडी सूरज तक

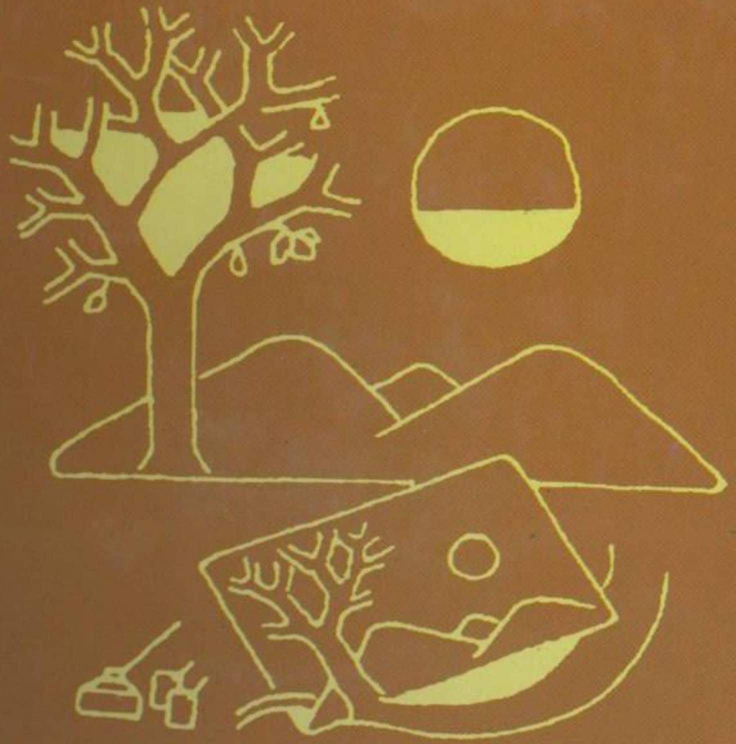

मुनि क्षमासागर

HB-P 030

जानता हूँ
कि पहली
और पूरी तो
अनुभूति है
ये कविताएं तो
दोयम्
और अधूरी हैं
पर करूँ क्या?
अपने पूरे होने तक
मेरे पास
देने को
और है ही क्या?

अपने
परम गुरु
आचार्यश्री
विद्यासागर जी को
समर्पित

शुभाशीष

पगडंडी सूरज तक

मुनि क्षमासागर

विद्या प्रकाशन मन्दिर
नई दिल्ली-110002

ISBN : 81-7135-017-8

पंचम संस्करण : सितम्बर 2002

मूल्य : तीस रुपये

प्रकाशक : विद्या प्रकाशन मंदिर
1681, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

प्राप्ति स्थान : गिफ्ट गारमेन्ट, माधवगंज,
विदिशा (म.प्र.) फोन : 07592-36615, 37356

शब्द संयोजन : शेफाली लेज़र सिस्टम, दिल्ली-32

आवरण : संतोष जड़िया, इन्दौर

मुद्रण : बालाजी आफसेट, दिल्ली-32

परिदर्शन

काव्य को हम जीवन और जगत् की सौन्दर्यमयी व्याख्या कह सकते हैं। वस्तुतः वह संवाद (डायलॉग) है व्यक्ति और व्यक्ति तथा व्यक्ति और समाज के मध्य। वह मनुष्य की सृजनधर्मिता और कल्पना-प्रवणता का प्रतीक है। हम जिसे दर्शन या फलसुफा कहते हैं, काव्य उससे काफी आगे का अस्तित्व है, किन्तु जब दर्शन और आध्यात्म का सत्य काव्य-के-सत्य में से हो कर गुजरता है तब उसकी छटा, उसकी छवि कुछ और ही होती है।

'पगडंडी सूरज तक' के कवि पर कवि शब्द के प्रायः सभी पर्याय शब्द सर्वांशतः लागू पड़ते हैं। वह मनीषी है, परिभू है, स्वयम्भू है अर्थात् चिन्तक है, प्रखर पारदृष्टा है और निज-निर्झर है। वह अपनी अनुभूति के लिए शब्द पर आश्रित नहीं है, इसीलिए कई जगह उसने शब्द की सत्ता को पुरजोर ललकारा भी है। शब्द की हदों से वह सुपरिचित है, इसीलिए उसने शब्द को उसकी तमाम संवेदनशीलताओं और लचीलेपन में व्यवहत किया है। कई बार तो उसने वाच्यार्थ में से ही व्यंग्यार्थ को उलीच लिया है। वह शब्द को अपनी अनुभूति की अंगुली थमा कर कई बार उसे उसकी अपनी सत्ता से आगे तक ठेल ले गया है। कई काव्य-पंक्तियों में हम उसके इस अपूर्व सामर्थ्य की प्रच्छन्न गंध ले सकते हैं।

'पगडंडी सूरज तक' की कविताओं के माध्यम से कवि ने व्यक्ति के भीतर बंद पड़े कपाट पर ज़बरदस्त दस्तक दी है। उसने चाहा है कि लोग किसी अशाश्वत पड़ाव पर न रुकें, वरन् अपने सनातन नीड़ के लिए तिनके चुनें और सफलतम यात्रा संपन्न करें। उसकी अपनी यात्रा अबाध है। उसने निर्धारित गन्तव्य और अपने मध्य किसी और का हस्तक्षेप पल-भर भी स्वीकार नहीं किया है। उसकी मस्ती कहें या हस्ती, यह है कि न तो वह किसी के लिए अड़चन बनना

चाहता है और न ही चाहता है कि कोई उसका पथ-विघ्न बनें। मूल में वह एक स्वतन्त्रचेता कवि है।

उसका यह वक्तव्य कि 'ये कविताएँ दोयम् हैं' भाषा की उस विवशता की ओर संकेत करता है, जो स्वयं अनुभूति की परिपूर्ण माध्यम नहीं है, बल्कि विकासोन्मुख माध्यम है।

उसके कवित्व के बारे में कोई भी फतवा देना कदापि तर्कसंगत नहीं है। वस्तुतः यह अनुभूतियों का द्रवित/ संवेदनशील जगत् है, अतः पाठकों से निवेदन है कि वे इन्हें अविकल पढ़ें और इसके रसार्थ को अपने रोम-रोम में रिसने दें, ताकि उन्हें इनमें-से वह सब मिल सके जिससे प्रायः लोग भूमिका-लेखन के कारण वंचित रह जाते हैं।

भूमिकाएं बहुधा हस्तक्षेप ही होती हैं। वे दीवार बन पड़ती हैं रचनाकार और रसग्राहक के मध्य। मैं यहां उस सब-सारे अपराध से बच रहा हूँ और कवि तथा रसग्राही सत्ता के बीच सेतु तो बन रहा हूँ, किन्तु विघ्न नहीं।

हीरा भैया प्रकाशन की अपनी सुदीर्घ प्रकाशन-परम्परा है। 'पगडंडी-सूरज तक' को प्रकाशित करने में उसे न सिर्फ प्रसन्नता का ही अनुभव हुआ है अपितु ऐसा करके वह गौरवान्वित भी हुआ है।

हमें विश्वास है कि इस पगडंडी से हो कर रसग्राही पाठक एक ऐसे आलोक-लोक की झलक-झाईं पा सकेंगे, जहाँ से प्रत्यावर्तन तो असंभव है ही, प्रायः लोग जहाँ पहुँचने के लिए कठोर साधना करते देखे गये हैं।

इन्दौर/24 जुलाई 1992 **—नेमीचन्द जैन**

सम्पादक 'तीर्थंकर' 'शाकाहार क्रान्ति'

क्रम

अन्तर / 9
10 / रोज हम
मुक्ति / 11
13 / वही है
प्रणाम / 14
15 / वह अपना
रोशनी के लिए / 16
17 / निशाना
कुछ भी नहीं / 18
19 / अहसास
दोहरे गणित / 20
21 / माटी
आकाश / 22
23 / कल
अतृप्त / 24
25 / ना सही
अगर / 26
27 / लोग
और शायद / 28
29 / मैं चुप
निर्बन्ध / 31
33 / घर
खिड़की / 34
35 / इस तरह
अब / 37
38 / आग
वह मैं / 39
40 / तटस्थ
नाद / 41

42 / व्यक्ति
अव्यक्त / 43
44 / पूर्णकाम
सबके पार / 45
46 / शिकायत
काश / 47
48 / प्रतीक्षा
कब तक / 52
53 / निःशेष
द्वार-दीप / 54
55 / एक ईंट
था / 56
57 / लहर
डोली / 58
59 / शेष
लिबास / 60
61 / अकेले
इम्तिहान / 62
63 / जवाब
उसने कहा / 64
65 / पड़ाव
सोच / 66
67 / ज़िन्दगी-भर
काँधे / 68
70 / पगडंडी
साज / 72
73 / अवसर
बसंत / 74
75 / खयाल
मुनिश्री की कविताओं पर नीरज जैन की अनुभूति / 77
80 / मुनिश्री की कविताओं पर राज केसरवानी की अभिव्यक्ति

अन्तर

ये मन्दिर
इसलिए कि हम
आ सकें
बाहर से
अपने में भीतर
ये मूर्तियाँ
अनुपम सुन्दर
इसलिए कि हम
पा सकें
कोई रूप
अपने में अनुत्तर
और
श्रद्धा से झुक कर
गलाते जाएँ
अपना मान-मद
पर्त-दर-पर्त निरन्तर
ताकि
कम होता जाए
हमारे
और प्रभु के
बीच का अन्तर

रोज हम

ये दीप धूप
ये गंध
मानो कह रही है
हमारा ही है यह
आत्म-सौरभ-अगंध
ये गीत-गान
वन्दना के छन्द
मानो कह रहे हैं
हमारा ही है यह
आत्म-गान अमन्द
ये प्रतिमा
अपलक निष्पन्द
मानो कह रही है
हमारा ही है यह
आत्म-दर्शन अनन्त
रोज हम
इनके करीब आयें
और इन्हें
अपने में-पायें
पुलक उठे
मनःप्राण

मुक्ति

वह देवता
जो ज्योति-सा
मेरे हृदय में
रोशनी भरता रहा
वह देवता
जो साँस बन
इस देह में
आता रहा
वह देवता
जिसका मिलन
इस आत्मा में
विराग का
कोई अनोखा गीत
बन कर, गूँजता
प्रतिक्षण रहा
वह देवता
मैं बँधा जिससे
मुझे जो मुक्ति का
संदेश नव
देता रहा
वह देवता
जो समय की
तूलिका से
मेरे समय पर
निज समय
लिखता रहा
वह देवता
जो मूर्ति में

कई रूप धरता
पर अरूपी ही रहा
वह देवता
जो दूर रह कर भी
सदा से
साथ मेरे है
यही अहसास
देता रहा
वह देवता
मैं जागता हूँ
या नहीं
यह देखने
द्वार पर मेरे
दस्तक सदा
देता रहा
वह देवता
जो गति
मेरी नियति था
ठीक मुझ-सा ही
मुझे करता रहा
वह देवता

वही है

उसने
एक पेड़ लिखा
खिड़की से बाहर
झाँका देखा
कोई और
उससे भी पहले
कई-कई पेड़
लिख गया
उसने सोचा
वह अब पहाड़ लिखेगा
देखा सहसा
कोई और सामने
एक पहाड़ लिख गया
उसने डरते-डरते
चुपके-से
एक नदी लिखा
और देखा
एक नदी
कोई और लिख गया
अब वह नहीं लिखता
कहता है
कोई और है
और सिर्फ वही है
जो लिखता है

प्रणाम

वेश-भूषा
जिसने रख दी उतार
अस्त्र-आयुध से
जो हुआ पार
देख कर लगा उसे
दिगम्बर हो जाना
अपने-आप में है
अपना शृंगार
सर्वमैत्री
सर्वप्रेम
और अप्रतिकार
लहराता है
प्रतिक्षण जिसमें
करुणा का
पारावार
प्रणाम उसे
मेरे
बारम्बार

वह अपना

बाँसुरी के स्वर
जाने किसे बुलाते हैं
फूल
हवाओं में
अपनी सुगन्ध
जाने किसे भेजते हैं?
सूरज की किरणें
रोज सबेरे
जाने किस द्वार पर
दस्तक देती हैं
वृक्ष की यह छाया
जाने किसके आने का
इंतज़ार करती है
काश,
सब
अपने को पा लेते

रोशनी के लिए

साँझ के किनारे
खड़े हो कर
मैंने/पहाड़ से उतरती
रात को देखा
और सोच में
डूब गया
कि अँधेरा
कितने जल्दी
उतर आया
सुबह
रोशनी के लिए
सूरज को
पूरा पहाड़
चढ़ना होगा

निशाना

जब भी मैंने
किसी और को
निशाना बनाया
और अपने
जीतने का
जश्न मनाया
मैंने पाया, मैं ही हारा,
अनजाने ही
मेरा तीर
मुझसे टकराया
शिकार मैं ही बना
और कई रोज तक
कराहती रही
मेरी घायल चेतना

कुछ भी नहीं

प्यासा मृग
मरीचिका में उलझा
और तड़प उठा
हमने कहा—
बेचारा मृग!
स्वाद की मारी मीन
काँटे-में उलझी
और मर गयी
हमने कहा—
अभागी मीन!
एक पतिंगा
दीपक की
जोत पर रीझा
और झुलस गया
हमने कहा—
पागल परवाना!
वाह रे हम,
अपनी प्यास
अपनी उलझन
और अपने दीवानेपन पर
हमें अपने से
कुछ भी
नहीं कहना

अहसास

हमने यहाँ
एक-एक चीज
और अपने बीच
वासनाओं के
नित-नवीन/रंगीन
परदे डाल रखे हैं
कि रोज
कुछ नया लगे
ज़िन्दगी
भ्रम में गुज़र सके
और बासेपन का अहसास
हमें
विरक्त न कर सके

दोहरे गणित

ज़िन्दगी में
हमारे चाहे/अनचाहे
बहुत कुछ
हो जाता है
हमारा मनचाहा हुआ
तो लगता है
यह हमने किया
हमारा अनचाहा हुआ
तो लगता है
शिकायत करें/पूछें
कि यह किसने किया
जीवन-भर
इसी दोहरे गणित में
हम जीते हैं
और
समझ नहीं पाते
कि अच्छा-बुरा
चाहा-अनचाहा
अपने लिए सब
हम ही करते हैं
अपनी मौत की इबारत
अपने हाथों
हम ही लिखते हैं

माटी

अपने को
पूरा गला कर
माटी
भगवान् बन गयी
दुनिया
उसके चरणों में
झुक गयी
बनाने वाले की आँख
अभी भी
खोज़ती है
कि उसमें
कहाँ क्या
कमी रह गयी

आकाश

रात आती है
सारा आकाश
तारों से
भर जाता है
दिन होते ही
मानों सब
झर जाता है
इसमें सोचो
तो सोचते ही रहो
हाथ क्या आता है?
जो समझते हैं
वे समझते हैं
कि डूबते/ऊगते
सितारे हैं
आकाश
अकेला था
अकेला ही
रह जाता है

कल

वह रोज की तरह
आज भी
अपने कमरे का
द्वार खोलेगा
सीढ़ियाँ चढ़ेगा
थका-हारा
वह बेचारा
कल के इंतज़ार में
आज फिर सोयेगा
कल
कोई और
द्वार खोलेगा

अतृप्त

कामनाओं-का-कलश
ऊपर से
सोने-सा
दमकता है
सुराख
उसमें कहीं नीचे
पैंदी में होता है
कोई इसे
कितना भी भरे
वह सदा
अतृप्त रहता है

ना सही

माना कि हममें
भगवान् बनने की
योग्यता है
पर इस बात पर
हम इतना
अकड़ते क्यों है?
(वह तो किसी
चींटी में भी है)
सवाल सिर्फ
योग्यता का नहीं
हू-ब-हू होने का है
स्वयं को
भगवान् मानने/मनवाने का नहीं
स्वयं भगवान्
बन जाने का है
हम अपने को
जरा ऊँचा उठायें
इस बार
ना सही भगवान्
एक बेहतर
इन्सान बन जाएँ

अगर

उसने सोचा
जब वह पहली बार
नीड़ से बाहर
पैर रखेगा
तब कोई आ कर
उसे थाम लेगा
आँचल से लगा कर
दुलार लेगा
पंख सहला कर
उसे उड़ने का साहस देगा
दो-चार क़दम
उसके साथ चलेगा
पर हुआ यह
कि उसने
न पैर बाहर रखा
न पंख खोले
न उड़ा
सोचता ही रहा
अगर ऐसा न हुआ
तो क्या होगा ?

लोग

कभी कहीं
कोई घटना होती है
तो लोगों को
बहुत कुछ
कहने-सुनने की
गुंजाइश मिलती है
हम लोग तो
चाहते ही यह हैं
कि जरा सा परदा हटे
और हम सब देख लें
कि जरा सा कोई छिद्र हो
और हम झाँक लें
घटना क्या हुई
इससे हमें
कोई सरोकार नहीं
हम जो चाहेंगे
वही दखेंगे
(जो हुआ वह नहीं देखेंगे)
भीड़ में
कोई हमें
सजग/संवेदनशील कहे
हम इतना ही चाहेंगे

और शायद

हम यहाँ
दो-चार क़दम चले
और ठहर गये
सोचने लगे
कि जब सब
आपोआप
समय आने पर होगा
तब हमें
क्यों व्यर्थ चलना है
और यदि चले भी
तो पहुँचेंगे–
इसका क्या भरोसा
चलो यहीं ठहर जाते हैं
आखिर
कहीं-न-कहीं पहुँच कर
ठहरना ही तो है
तब से हम
यहीं ठहरे हैं
और शायद
मन-ही-मन
हँसते भी हैं
कि चलने वाले
कितने नासमझ हैं

मैं चुप

सबको छोड़कर
मैं अपने को
खोज़ने निकला
लोगों ने इसे
मेरी अकर्मण्यता
और पलायन कहा
मेरा रास्ते पर
निश्छल
निरावरित चलना
लोगों को
पागलपन लगा
मेरे सर्वप्रेम
सर्वमैत्री को
लोगों ने
वासना
और अहंकार कहा
मेरी सरलता
और कोमलता को
लोगों ने
कायरता कह कर
खूब मज़ाक बनाया
मैं चुप रहा
और चुपचाप
चलता रहा
चलते-चलते
अपने में
खो गया/नहीं रहा
तब से
लोगों ने

मुझे देवता कहा
अब मैं
उनका बनाया
पत्थर का
देवता हूँ
और मुस्कराता हूँ
ये सोच कर
कि जीते-जी
मुझ आदमी में
जो देवत्व
किसी ने नहीं देखा
उसे आज
मेरी प्रतिमा में
कैसे देख लिया?

निर्बन्ध

यह मैं
एक नदी हूँ
कि निरन्तर
बहती ही रहती हूँ
अपने किनारे
आये लोगों से
पूछती हूँ
कि इतना
क्यों सोचते हो
ज्यादा मत सोचो
समर्पित हो
अपने-में-डूबो
और बहो
मैं अपने में मगन
बहती ही रहती हूँ
यह मैं
एक नदी हूँ
कि निरन्तर
बहती ही रहती हूँ।
तुम्हारा
कभी-कभी
मुझमें पैर डुबोना
मुझे रोकना
हल्की थाप दे कर
कोई स्वर खोज़ना
मुझे लय में बाँधना
सब व्यर्थ है
मैं जनम-जनम की

निर्बन्ध
तुम्हें निर्बन्ध करने
आयी हूँ
यह मैं
एक नदी हूँ
कि निरन्तर
बहती ही रहती हूँ।
किसी नौक़ा पर
हो कर सवार
रोज़-रोज़
इस पार से उस पार
तुम मेरी
प्राणधारा को चीर कर
कहाँ जाते हो
वहाँ देखो
उस पार
मैं ही तो हूँ
आओ मेरे साथ आओ
मैं सागर की हूँ
सागर की ओर
बहती हूँ
यह मैं
एक नदी हूँ
कि निरन्तर
बहती ही रहती हूँ

घर

यहाँ आदमी
पहले अपने मन का
एक घर बनाता है
जो बनते वक्त
बहुत बड़ा बनता है
पर रहते-रहते
बहुत छोटा
लगने लगता है
फिर मजबूरन
उसे
एक घर और
बनाना पड़ता है
आदमी
वही रहता है
घर
बदल जाता है

खिड़की

सबन्धों के बीच
पहले
एक दीवार
हम खुद
खड़ी करते हैं
फिर उसमें
एक खिड़की
लगाते हैं
पर ज़िन्दगी-भर
करीब रह कर भी
हम खुल कर
कहाँ मिल पाते हैं ?

इस तरह

एक उड़ते
पखेरू ने
मुझसे निरन्तर
उड़ते रहने को कहा
एक पेड़ ने
तूफानों की बीच
अडिग
खड़े रहने को कहा
और एक नदी
मुझसे
निरन्तर
बहते रहने को कह गयी

सूरज ने
सुबह आ कर
मुझसे
दिन-भर
रोशनी देते रहने को कहा
चाँद-सितारों ने
रात-भर
अँधेरों से
जूझने को कहा
और एक नीली झील
मुझे बाहर-भीतर
एक सार
निर्मल होने को कह गयी

सागर ने
धीरे से

लहरा कर कहा—
सीमाओं में रहो
आकाश ने अपने में
सबको समा कर कहा—
असीम होओ
और एक नन्हीं बदली
प्रेम से भरकर
मुझसे
निरन्तर
बरसने को कह गयी
मेरी ज़िन्दगी
इस तरह
सबकी हो गयी

अब

उनके बीच का
अकेला—
भला आदमी
गाँव से चला गया
जहाँ गया
वही रम गया
वे अब
महसूस करते हैं
कि पहले रोशनी थी
अब अँधेरा हो गया

आग

कितनी बार
इस आग से गुज़रा हूँ
जिसे तुम
आग समझते हो
यह जानते हुए भी
कि एक रोज
इस आग से
सब गुज़रते हैं
तुम चाहते हो
कि मैं बचा रहूँ
और मैं
यह सोच कर
कि यदि वह आग
कहीं है
जिसमें
सब जल जाता है
तो उससे
गुज़रना चाहता हूँ
ताकि
अपने सिवा मैं
कुछ और न रहूँ

वह मैं

मैंने पर्वत लाँघे
नदियाँ पार कीं
कई रास्ते
चल कर तय किये
आकाश की
ऊँचाई
सागर की
गहराई नापी
दुनिया को देखा
लोगों को परखा
पर फिर भी
लगता है
कुछ अनछुआ
अनदेखा है
कुछ अलंघ्य
अनलेखा है
और शायद
वह मैं ही हूँ

तटस्थ

मैं
धारा के बीच
तटस्थ हूँ
मानो—
किनारे पर
बैठा हूँ
और
डूबने के लिए
मुक्त हूँ

नाद

नदियों की
कल-कल ध्वनियाँ
मौन हुई
लो पहुँच गये हम
सागर-तट पर
जब से नाद
सुना अनहद का
लगता है
ठहर गया स्वर
पहुँच गये हम
अपने-तट पर

व्यक्ति

साधना की
पृष्ठभूमि–
विरक्ति है
आराधना–
अनुरक्ति है
शब्द अपने-आप में
अभिव्यक्ति है
मौन में
बस, व्यक्ति है

अव्यक्त

जो देखता है
सृष्टि को
एक दृष्टा की तरह
वह स्वयं अदृष्ट,
व्यक्त है
जिसके हृदय में
सृष्टि का सब
वह स्वयं
अव्यक्त

पूर्णकाम

अपने मरने का
जिन्हें डर है
वे डरें
और रखें
बचने के लिए
अस्त्र-शस्त्र,
जो कुरूप हैं
वे पहने आभूषण
ओढ़ा करें वस्त्र,
पर तुम तो
सर्वांग सुन्दर हो
इसीलिए दिगम्बर हो
अस्त्र-आयुध से
तुम्हें क्या काम ?
तुम अपने में हो
और हो पूर्णकाम

सबके पार

छू कर जिसे
पाया नहीं
रस लिया चाहा
कि रसना थक गयी है
मैंने पुकारा भी उसे
पर नहीं आयी
प्रतिध्वनि
जिसे मैं सुन सकूँ
नासिका भी
गंध जिसकी पा न पायी
रूप देखूँगा
आज उसका
पर नयन भी चुक गये
एक ही अहसास
होता है सदा
कि वही है
जो रूप-रस
औ' गंध सबके पार है

शिकायत

कागज की कश्ती
कुछ देर
लहरों में खेली
फिर डूब गयी
उसे शिकायत है
कि किनारों ने
उसे धोखा दिया

काश

ये आज
हम, कल रच चुके थे
ये लकीरें
जो आज दिखी हैं
हम, कल लिख चुके थे
ये बादल
जो आज बरसे हैं
कल भर चुके थे
हमारे पास
आज के लिए
वक़्त ही कहाँ है
आज तो हम
आगामी कल रच रहे हैं
बड़ी बेफिक्री में
कल की फिक्र में
जी रहे हैं
काश!
हम आज में जीते
न कल करते
न आज होता,
न आज करते
न कल होता

प्रतीक्षा

एक बीज
धरती में
जब भी गिरता है
पहले माटी में
मिलकर/मिटता है
ऐसे ही जीवन में
झुकना
धरती-सा होना
क्षमा
और अहं गलाकर
सबसे मिलना
मृदुता है
उगा अंकुर
सीधा हो कर
जैसे ऊपर उठता है
तन-मन-प्राणों का
सीधा होना
ऊँचे उठना
ऋजुता है
माटी जो
शेष रही अंकुर पर
उसे हटा कर
नन्हीं कोंपल
प्रकाश में आकर
जैसे खिलती है
ऐसे ही जीवन में
लोभ-विकार हटाकर
निज प्रकाश में आना

खिलना
सत्य और
शुचिता पाना है
नन्हें पौधे को
जैसे
बाड़ लगाकर
हम/बचा
लिया करते हैं
ऐसे ही
अपने जीवन को,
मन को
सदा बुराई से
बचाते रहना
संयम से रहना है
जैसे पौधा
गर्मी
सर्दी
वर्षा सहकर
बड़ा वृक्ष बनता है
ऐसे ही जीवन में
सब कुछ सहना
और जीतना मन को
उत्तम तप करना है
एक-एक कर
सूखे पत्ते
पतझर आने पर
जैसे झरते हैं
वृक्ष प्रतीक्षा में
वसंत की
जैसे मौन
खड़े रहते हैं

ऐसे ही जीवन में
अविनश्वर को पाने
जो भी नश्वर है
उसे सहज
छोड़ते जाना
त्यागधर्म पाना है
अपने सुरभित
पुष्प लुटा कर
जैसे वृक्ष
अडिग अकेले
आनन्दित रहते हैं
ऐसे ही जीवन में
सबके बीच
स्वयं को
एकाकी पाना
मैं औ' मेरेपन की
मन में
बात नहीं लाना
अकिंचन होना है
घने वृक्ष की छाया
जैसे
सबको मिलती है
उसमें जैसे
अपने-दूजे का
भेद नहीं है
ऐसे ही जीवन में
सबमें पाना ब्रह्म
सभी को अपनाना है
और वासना में जाती
जीवन-की-धारा
बड़े जतन से

अपनी ओर
बहा लाना है
यही ब्रह्म में रमना
ब्रह्मचर्य पाना है
यही धर्म का मर्म
वृक्ष-सा जीवन
पत्थर की
चोटें खा कर भी
हमें सभी को
मीठे फल देना है

कब तक

कुछ कहो
और कह कर
खोल दो
ये बन्ध मेरे
मैं बंधा
कब तक रहूँगा
मौन में
हे निर्बन्ध!
तेरे

निःशेष

मुझे
कहना है अभी
वह शब्द
जिसे कह कर
निःशद हो जाऊँ
मुझे
देना है अभी
वह सब
जिसे दे कर
निःशेष हो जाऊँ
मुझे
रहना है अभी
इस तरह
कि मैं रहूँ
लेकिन
'मैं' रह न जाऊँ

द्वार-दीप

मौत को
प्रणाम करता हूँ
कि मैं
जीने की
शुरूआत करता हूँ
डूबते सूरज को
प्रणाम करता हूँ
कि मैं
द्वार पर
इक दीप धरता हूँ

एक ईंट

पुरानी
दीवार की
एक ईंट
और गिर गयी
लगता है जैसे
किसी ने पूछा हो
ज़िन्दगी
और कितनी रह गयी?

था

किसी के
मरने पर
मालूम पड़ता है
कि वह था
और अभी तक
ज़िन्दा था

लहर

रेत पर लिख कर
इबारत
ज़िन्दगी की
सो गये हम
और
हम जागें
कि इसके
तनिक पहले
एक छोटी लहर
आ कर जा चुकी

डोली

साँझ के द्वारे
रात आयी है
स्वागत करो
दीप जलाओ
देखो तो
यह रोशनी का
संदेश लायी है
जीवन के द्वारे
मौत आयी है
स्वागत करो
डोली सजाओ
देखो तो
यह अपने घर
लौट आने का
संदेश लायी है

शेष

जीवन के
कागज पर
मौत की
स्याही गिर गयी
बात आयी-गयी
हो गयी
कुछ धब्बे
अभी भी पड़े हैं
सफेदी
जाने कहाँ चली गयी

लिवास

मौत
ज़िन्दगी का लिबास
ओढ़ कर आती है।
ज़िन्दगी-भर
लिबास दिखता है
मौत
कहाँ दीख पाती है?

अकेले

ज़िन्दगी
जाने को थी
हमने
मौत को
बुला लिया
क्या करें
हमसे
अकेले
रहा नहीं गया

इम्तिहान

जीवन-भर
मौत
हमारा—
इम्तिहान लेती है
देखो ना—
एक-एक साँस
गिन-गिन कर लेती
और देती है
हमने
जीवन-भर
क्या खोया
क्या पाया
इसका लेखा-जोखा
अन्त में आ कर
यही तो लेती है
हम अपना घर
इसे बतायें
बुलायें—
या न बुलायें
यह दबे पाँव आती
और हमें
साथ ले कर
सरेआम
चली जाती है

जवाब

हमारी हर साँस
मौत के नाम
रोज-रोज
खत लिखती है
लेकिन मौत
एक रोज आ कर
खुद जवाब देती है

उसने कहा

मौत ने आकर
उससे पूछा—
मेरे आने से पहले
वह—
क्या करता रहा?
उसने कहा—
आपके स्वागत में
पूरे होश
और जोश में
जीता रहा
सुना है
मौत ने
उसे प्रणाम किया
और कहा—
अच्छा जियो
अलविदा

पड़ाव

ज़िन्दगी का
एक पड़ाव
ख़त्म हुआ
उसने रास्ता बदला
मैंने
उससे पूछा—
यह पड़ाव
कैसा रहा?
उसने कहा—
अपने करीब रहा
मैं नहीं समझा
मैंने फिर पूछा
उसने फिर कहा—
सबके बीच
अपना हो कर रहा
मुझे गुमसुम
खड़ा देख कर
उसने धीरे-से
मुस्करा कर कहा—
ये आखिरी पड़ाव था
सफ़र ख़त्म हुआ

सोच

एक वे हैं
जो ये सोच कर
जी रहे हैं
कि एक दिन
मरने का तय है
तो आज अभी
ठाठ से जियो
एक तुम हो
जो ये सोच कर
मर रहे हो
कि आज अभी
यदि मौत आयी है
तो शान से मरो
ये तो हम हैं
जो इस सोच में
न जी पा रहे हैं
न मर पा रहे हैं
कि तुम क्यों
शान से मर रहे हो
कि वे क्यों
ठाठ से जी रहे हैं ?

ज़िन्दगी-भर

हम ज़िन्दगी-भर
जीते हैं
कुछ इस तरह
कि जैसे
जीना नहीं चाहते
जीना पड़ रहा है
और मरते वक्त
मरते हैं
कुछ इस तरह
कि जैसे
मरना नहीं चाहते
मरना पड़ रहा है
शायद इसीलिए
हमें जीवन
दुहराना पड़ रहा है!

काँधे

मुझे मौत में
जीवन के–
फूल चुनना है
अभी मुरझाना
टूट कर गिरना
और अभी
खिल जाना है
कल यहाँ–
आया था
कौन, कितना रहा
इससे क्या?
मुझे आज
लौट जाना है
मेरे जाने के बाद
लोग आयें
अरथी सँभालें
काँधे बदलें
इससे पहले
मुझे खुद सँभलना
और बदल जाना है
मेरे जाने के बाद
लोग आयें
मेरी जली देह की
राख उठायें
उसे कहीं सिरायें
इससे पहले
मुझे अपने
अहंकार को जलाना

अपने को, अपने में
सिराना-डुबोना है
और
और ऊँचे उठना है
मौत आये
और जाने कब आये
अभी तो मुझे
रोज-रोज जीना
और रोज-रोज मरना है

पगडंडी

जीवन रचना गीत
मौत गाती है
साँसों में आवाज़
उसी के
आने की आती है
जीवन बुनता राह
मौत राही है
साँसों में पदचाप
उसी के
आने की आती है
सुख-दुख तो
दुनिया में
सबको होते हैं
जो अपने हैं
वे अपनों के ही
सुख-दुख में
हँसते-रोते हैं
एक मौत है
सुख-दुख में
सबके
एक साथ आती है
जीवन-भर जो
साथ रहे आते हैं
ये तो सब
जीवन के साथी हैं
ये अपनी-अपनी मौत
अन्त में
साथ यही जाती है

वन होता है
बहुत घना
सूरज की किरणों को
राह नहीं मिलती–
आने को,
जाने किस–
पगडंडी से
ये चुपचाप
चली आती है
जीवन जितना
जाता दूर
पास उतनी ही
ये आती है
मानो छाया है
ये जीवन की
सो जीवन-भर
पीछे-पीछे आती है

साज

मौत;
मैं सुन रहा हूँ
तुम्हारे
आने से पहले
तुम्हारे
आने की आवाज
कितना मधुर है
मेरे द्वार पर
आ कर
तुम्हारा
मुझे पुकारने का अन्दाज़
कि चलो!
ऐसा लगता है
मानो दूर कहीं
बज रहा हो
कोई सुरीला साज
कि चलो!!
और तुम्हारा
यह इस तरह
खुद चल कर
मेरे करीब आना
अपने हाथों
मेरे बंद पिंजरे का
द्वार खोलना
मुझे मुक्त करना
कित्ता अच्छा
लग रहा है आज
अपने घर—
मानसरोवर
लौटता
मेरा मानस-हंस
तुम्हें प्रणाम करता है
अन्तिम बार आज

अवसर

जो उसने
जीते जी
मौत पर लिखा
उसे लोगों ने
कई-कई भाषाओं में
पढ़ा/सुना
औरों को सुनाया
पर मरते वक्त
हमने देखा
उनमें-से कोई भी
मौत की भाषा
नहीं सीखा
हर आदमी
मौत से डरा
और दहशत में
ज़िन्दगी का
एक और अवसर
सबने खो दिया

बसंत

मुझसे सुन कर
बात मरण की
मेरे भीतर–
तुम्हें निराशा
छायी लगती होगी
पर जीवन में
स्वीकार मरण का
हँसी-खुशी कर लेना
जीवन का
इनकार नहीं है
वह तो क्रम है
संसृति का
जैसे वृक्षों से
पतझर आने पर
सूखे पत्तों का गिरना
पतझर से
इनकार नहीं
स्वागत है
आते वसंत का

खयाल

कागजों पर
बहुत सोच-सोच कर
उसने लिखा–
जीवन स्वयं का
बाद में
उसे खयाल आया
वक़्त की दीमक
और हवाओं का

समीक्षा-1

मुनिश्री की कविताओं पर नीरज जैन की अनुभूति

आप
मानें या न मानें
ठीक कहता हूँ कि
ये कविताएं नहीं हैं।

यदि हैं
तो मुझे बतलायें
ये किसने, कब, कहाँ,
किससे कही हैं?

जब किसी के अन्तस् में
जीने की पीड़ा मर गयी हो
मृत्यु की विभीषिका
खो गयी हो,
आनन्द की धारा से
हृदय की गागर
बिलकुल लबालब हो गयी हो,
आप ही सोचें कि फिर
उस कुम्भ से
आनन्द के रस-बिन्दु
छलकेंगे नहीं?

जब किसी का मन
सभी चाही-चुनी
उपलब्धियों से भर गया हो,
धरा पर चलता हुआ जो
सिर्फ अपने आप में

निःशंक, निडर, निष्कम्प,
तृप्त–ठहर गया हो,
आप बतलायें कि फिर
उस मौन साधक के
समुन्नत भाल पर
अंतर-उदित प्रकाश के
कुछ पुंज
झलकेंगे नहीं?
बस, हो गया,
वे कि जो छलके-ढले
ये शब्द
वे रस-बिन्दु ही हैं
जो कभी झलके
प्रकाशित हृदय से
आत्म-गौरव की
प्रभा के पुंज
ये शायद वही
(शायद नहीं)
बिल्कुल वही हैं

कोई कवि है
और/हमें सुना रहा है
बात इतनी भर नहीं है

आप मानें या न मानें
किन्तु
ये बिखरे हुए से शब्द
ये कुछ पंक्तियाँ
कविता नहीं है।

इसलिए

अंदाज़ नामुमकिन कि
थे किसने, कब, कहाँ,
किससे कही हैं।

लेखनी से
तूलिका का काम ले
जिसने रचे
ये रंग-बिरंगे चित्र
रुचिर-ललाम
उस मननशाली
महामति
मौन साधक की
अभीप्सित साधना को
शत-सहस्र प्रणाम

समीक्षा-2

मुनिश्री की कविताओं पर राज केसरवानी की अभिव्यक्ति

मुनि क्षमासागर के कविता संग्रह–'पगडंडी सूरज तक' को पढ़ना, एक अनन्त चिन्तन काव्य यात्रा से होकर गुजरना है।

आमतौर पर दर्शन और चिन्तन की कविताएं इतनी जटिल हो जाया करती हैं कि अधिकांश पाठक इन्हें दूर से प्रणाम कर लेते हैं और तद्विषयक कविताएं कुछेक प्रबुद्ध पाठकों तक सीमित हो जाती हैं।

मुनि क्षमासागर जी का यह कविता संग्रह जिसमें जीवन-जगत की चिन्तन पूर्ण 54 छोटी-छोटी कविताएं हैं–इस बात का अपवाद है। क्योंकि इन कविताओं की एक प्रमुख विशेषता है–सहजता। जीवन, जगत, जन्म, मृत्यु, प्रार्थना, आराधना, ईश्वर, प्राणी, गति-दुर्गति, नश्वरता, क्षणभंगुरता को सीधे सादे ढंग से कविता में रखा गया है। काव्यमय प्रस्तुति बेजोड़ है।

अक्सर यह पाया गया है कि दर्शन व आध्यात्म पर रचित कविताएं, कविताएं कम, उपदेश अधिक हो जाया करती हैं, लेकिन 'पगडंडी सूरज तक' में काव्यत्व पूरी तरह सुरक्षित है। छोटे-छोटे शीर्षकों में और नितांत छोटे मीटर में, गहन प्रसंगों को, बड़ी-बड़ी बातों को, सहजता के साथ रचा गया है। सभी वर्ग के पाठकों को प्रभावित करने की सामर्थ्य इन कविताओं में है।

कहीं-कहीं कबीर आदि संत कवियों का स्मरण हो आता है।

इस संग्रह में मुनिश्री क्षमासागर जी एक संत कवि के रूप में अपनी सहज और उत्कृष्ट अनुभूतियों के साथ प्रकट हुए हैं।

मुनिश्री क्षमासागर

जन्म	: 20 सितम्बर 1957 सागर
शिक्षा	: सागर विश्वविद्यालय एम.टेक
पूर्वनाम	: सिंघई वीरेन्द्र कुमार
माता	: श्रीमती आशादेवी
पिता	: जीवन कुमार सिंघई
क्षुल्लक दीक्षा	: नैनागिरि 10 जनवरी, 1980
ऐलक दीक्षा	: मुक्तागिरी 7 नवम्बर, 1980
मुनि दीक्षा	: नैनागिरी 20 अगस्त 1982
काव्य-संग्रह	: (1) पगडंडी सूरज तक (2)मुनि क्षमासागर की कविताएँ
अनुवाद	: एकीभाव स्तोत्र
संस्मरण	: (1) आत्मान्वेषी (2) अमूर्त शिल्पी